नोटा और भारत का मतदाता

पृष्ठभूमि

- “जनता द्वारा, जनता के लिए, जनता का शासन ही लोकतंत्र है” अब्राहम लिंकन की यह प्रसिद्ध उक्ति लोकतंत्र की सबसे सरल और प्रचलित परिभाषा मानी जाती है। गौरतलब है कि लोकतंत्र की इस व्यवस्था में मालिकाना हक़ तो जनता का ही है लेकिन जिस तरह से जनता के प्रतिनिधि चुने जाते हैं उसे लेकर असंतोष ज़ाहिर किया जाता रहा है।
- लोकतंत्र के महापर्व यानी चुनावों में यदि जनता को कोई भी उम्मीदवार पसंद नहीं आता हो फिर भी वह यह समझकर मतदान करता है कि दो बुरे उम्मीदवारों में से जो कम बुरा है उसके पक्ष में मतदान किया जाए तो निश्चित ही यह लोकतंत्र के लिये शुभ संकेत नहीं है।
- क्या हमारी व्यवस्था ऐसा उम्मीदवार नहीं दे सकती जो जनता के हित और कल्याण के लिये प्रतिबद्ध हो, मान लिया जाए कि किन्हीं परिस्थितियों में कोई भी सुयोग्य उम्मीदवार नज़र नहीं आता तो अब जनता क्या करे? इस सवाल को लेकर बहुत लम्बे समय तक बहस चलती रही।
- अंततः नोटा (none of the above-NOTA) के रूप में इसका समाधान प्रस्तुत किया गया। लेकिन क्या नोटा लोकतंत्र में जनता के मालिकाना हक को कायम रखने में सफल रहा है, या सफल रहेगा? यह अभी भी यक्ष प्रश्न बना हुआ है। अतः इस आलेख में नोटा की सम्भावनाओं के संबंध में चर्चा करना दिलचस्प होगा।

क्या है नोटा?

- भारत में नोटा पहली बार सुप्रीम कोर्ट के 2013 में दिये गए एक आदेश के बाद शुरू हुआ, विदित हो कि पीपल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज़ बनाम भारत सरकार मामले में शीर्ष न्यायालय ने आदेश दिया कि जनता को मतदान के लिये नोटा का भी विकल्प उपलब्ध कराया जाए। इस आदेश के बाद भारत नकारात्मक मतदान का विकल्प उपलब्ध कराने वाला विश्व का 14वाँ देश बन गया। नोटा के तहत ईवीएम मशीन में नोटा (NONE OF THE ABOVE-NOTA) का गुलाबी बटन होता है। यदि पार्टियाँ ग़लत उम्मीदवार देती हैं तो नोटा का बटन दबाकर पार्टियों के प्रति जनता अपना विरोध दर्ज करा सकती है।

नोटा के तीन वर्षों के पश्चात की स्थिति

- विदित हो कि नोटा के लागू होने के बाद से अब तक एक लोक सभा चुनाव और चार दौर के विधान सभा चुनाव हो चुके हैं फिर भी नोटा के तहत किये गए मतदान का प्रतिशत 2.02 से आगे नहीं बढ़ा है, दरअसल अभी भी लोगों में नोटा को लेकर जागरूकता का अभाव है।
- नोटा लागू होने के उपरांत हुए लोक सभा और विधानसभा चुनावों के दौरान होने वाले कुल मतदान के आँकड़ों का अध्ययन करें तो कुछ दिलचस्प आँकड़े सामने आते हैं जैसे- नोटा के अंतर्गत मतदान का प्रतिशत उन जगहों में अधिक रहा है जो नक्सलवाद से प्रभावित इलाके हैं या फिर आरक्षित चुनाव क्षेत्र हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि चुनाव क्षेत्रों को आरक्षित करने के सन्दर्भ में अभी भी सामाजिक सहभागिता का अभाव है और नक्सलवाद प्रभावित क्षेत्रों में रहने वाले लोगों में राजनैतिक दलों को लेकर अभी भी उतनी दिलचस्पी नहीं पैदा हुई है।
- एक और संकेत यह देखने को मिला है कि जहाँ केवल दो मुख्य राजनैतिक दलों के उम्मीदवार चुनाव मैदान में थे वहाँ भी नोटा के तहत मतदान का प्रतिशत अधिक है। निष्कर्षतः हम कह सकते हैं, लोग चुनावों में क्षेत्रीय दलों को बड़ी भूमिका में देखना चाहते हैं। हालाँकि ये आँकड़े अभी तक एक से अधिक स्रोतों के माध्यम से नहीं आए हैं अतः यह देखना होगा कि नोटा के संबंध में भविष्य में आने वाले अन्य आँकड़ों का रुझान क्या है?

नोटा आवश्यक क्यों?

- विदित हो कि नोटा की माँग का उद्देश्य यह था कि लोकतंत्र में जनता के मालिकाना हक़ को सुनिश्चित किया जाए। यह जनप्रतिनिधियों को निरंकुश न होने, उन्हें उनके दायित्यों के प्रति ईमानदार बनाए रखने की कारगर व्यवस्था हो सकती है। जनता को उम्मीदवारों को नकारने का विकल्प देना इस बात का परिचायक है कि लोकतंत्र में जनता ही सर्वोपरि है।
- गौरतलब है कि बहुत से लोग किसी भी उम्मीदवार को सही नहीं मानते हुए मतदान नहीं करना चाहते फिर भी वे इसलिये ऐसा करते हैं कि कहीं उनकी जगह कोई दूसरा मतदान न कर दे, पहले उन्हें विवश होकर किसी न किसी को मत देना ही पड़ता था लेकिन नोटा आने के बाद ऐसे लोगों को विकल्प मिल गया है।

नोटा होना न होना एक समान क्यों?

- सैद्धांतिक तौर पर तो नोटा एक महत्त्वपूर्ण प्रयास है लेकिन वास्तविकता के धरातल पर यह वांछित परिणाम देने में उतना सफल प्रतीत नहीं हो रहा है। दरअसल, यदि नोटा के अंतर्गत पड़े मत का प्रतिशत, किसी अन्य उम्मीदवार को मिले मत के प्रतिशत से अधिक हो तब भी अन्य सभी उम्मीदवारों

में जो सबसे आगे होगा वह विजयी घोषित कर दिया जाएगा। इस बिंदु पर कई विद्वान तो नोटा को लोकतंत्र के महापर्व में सिस्टम की तरफ से जनता को बाँटा गया झुनझुना तक की संज्ञा दे डालते हैं।

निष्कर्ष

- यदि लोकतंत्र के मूल्यों की रक्षा करनी है तो चुनाव सुधार पहला प्रयास होना चाहिये। दरअसल, जनता यदि अपने प्रतिनिधियों से असंतुष्ट है तो अगले चुनावों में उन्हें सबक सिखा सकती है, चुनाव तो 5 साल में एक बार आते हैं अतः जनता के पास 'राईट तो रिकाल' के तहत उन्हें समय से पहले वापस बुलाने का भी अधिकार है, लेकिन समस्या यह है कि कई बार ऐसी परिस्थितियाँ बन जाती हैं जब जनता को लगता है कि सारे ही उम्मीदवार अयोग्य हैं, फिर भी किसी न किसी का जीतकर संसद या विधान भवन में पहुँच जाना निश्चित ही नोटा के मूल उद्देश्य के सापेक्ष नज़र नहीं आता।
- हालाँकि सुप्रीम कोर्ट ने नोटा को आवश्यक बनाए जाने के अपने आदेश में केवल इस पहलू पर गौर किया था कि यदि जनता को कोई भी उम्मीदवार पसंद नहीं आता है तो वह क्या करे। लेकिन यह सवाल भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है कि यदि नोटा को किसी भी उम्मीदवार से अधिक मत मिलने की सूरत में क्या किया जाए? मद्रास उच्च न्यायलय में नोटा के तहत सभी उम्मीदवारों को अस्वीकार करने के संबंध में एक जनहित याचिका दायर की जा चुकी है। हालाँकि मसला केवल न्यायपालिका के ही दायित्व का नहीं है, विधायिका को भी नोटा को व्यवहारिक बनाए जाने के संबंध में प्रयास करना चाहिये।
- विकास या बेहतरी में अवरोध उत्पन्न होते ही जनता बिदकती है और राजनैतिक दलों का किला ढहने लगता है लेकिन जाति और धर्म को मिलाकर बनाए गए सीमेंट से इस किले की मरम्मत कर दी जाती है। जागरूक मतदाता यह सोचता है कि वह किसी को भी मत नहीं देगा और वह नोटा का बटन दबा आता है, जबकि अप्रत्यक्ष तौर पर इससे होता तो कुछ भी नहीं है, हाँ हमलोगों को यह निष्कर्ष निकालने का मौका ज़रूर मिल जाता है कि किसी स्थान विशेष पर नोटा के अंतर्गत हुए मतदान के निहितार्थ क्या हैं? नोटा की पृष्ठभूमि में यह सब कब तक चलता रहेगा? नोटा, स्वाभाविक तौर पर भी अपना अगला चरण तो तलाशेगा ही।

PDF Refernece URL: https://www.drishtiias.com/hindi/printpdf/nota-and-the-indian-voter